डॉ. फ़ादर कामिल बुल्के: जीवन और कार्य

– डॉ. मोबिन जहोरोद्दीन

हम जो जन्में थे गाँवों में
नगरों और बदलते चेहरों से दूर,
हमें एक ऐसा जन्मसिद्ध अधिकार मिला है
जिसे कोई बेच नहीं सकता
और एक ऐसा रहस्यमय आनन्द
जिसे कोई शब्दों में कह नहीं सकता।

अपने गाँव से लगाव और प्रेम में यह कविता अक्सर फ़ादर कामिल बुल्के कहते रहते थे। उन्हें अपने गांव, अपनी मातृभूमि और अपनी मातृभाषा से बेहद लगाव और प्रेम था। बेल्जियम के पश्चिम फ़्लैंडर्स प्रांत के रम्सकपैले गाँव में एक दिवालिया हो चुके ज़मींदार परिवार में 01 सितंबर 1909 को हुआ। पारिवारिक–आर्थिक कारणों से इनका बचपन अपने ननिहाल लिस्सेवेगे में बीता। माता मरिया बुल्के अत्यंत संवेदनशील और मन से पवित्र गृहिणी थीं कि पड़ोस में किसी को भी सहायता की जरूरत होती, तो वे सबसे पहले उपस्थित होती। वे सेवाभाव से ओतप्रोत माँ थीं। वे अपने बच्चों को फ़्लेमिश कविताएँ और लोकगीत सुनाया करती थीं। वे अपनी बेटी जूलियन और बेटे गैब्रिएल और रॉबर्ट में से सबसे अधिक प्रेम अपने बड़े बेटे कामिल से ही किया करती। जब कामिल लगभग सात–आठ वर्ष के थे, तब उनके पिता अदोल्फ़ बुल्के को अनिवार्य सैनिक भरती के तहत प्रथम विश्वयुद्ध के मोर्चे पर जाना पड़ा। पिता अदोल्फ़ काफ़ी अनुशासनप्रिय, गंभीर और बलिष्ठ व्यक्ति थे। जब पिता युद्ध पर गए हुए थे, तब मरिया ने बच्चों की काफ़ी मेहनत से देखभाल की। यही कारण है कि सन्यासी होने बाद भी फ़ादर कामिल बुल्के

अपनी माँ से आजीवन जुड़े रहे और उन्होंने अपनी माँ को अंत समय तक पत्राचार जारी रखा। पत्रों के अंत उनकी माता जी अक्सर "माँ, जो तुम्हें कभी भूलती नहीं" लिखा करती।

मदर गेरट्रूड के कॉन्वेन्ट में प्राथमिक और गाँव की नगरपालिका में माध्यमिक शिक्षा पाने के बाद उन्हें उच्च शिक्षा के लिए पास के शहर ब्रुगे के सेंट फ्रांसिस स्कूल में दाखिला मिल गया। अपने माता–पिता से मिले गुणों और अपनी मेहनत के चलते वे न सिर्फ हर कक्षा में प्रथम आते थे, बल्कि अपने दोस्तों के भी काफी प्रिय थे। सन 1928 में उच्च अंकों से हाई स्कूल पास करने के बाद उन्होंने यूरोप में अपने स्तर के लिए प्रसिद्ध लूवेन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और उस समय सबसे मुश्किल समझे जाने वाली इंजिनीयरिंग की पढ़ाई प्रथम श्रेणी के साथ उत्तीर्ण की। वे विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले अपने गांव के पहले छात्र थे।

लूवेन विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए उन्होंने अपने जीवन का मकसद तय कर लिया था कि वे इंजीनियर बनकर एक सामान्य जीवन बिताना पसंद करेंगे, न कि ताम–झाम वाली जिंदगी उन्हें नापसंद थी, लेकिन अपने आस–पास होने वाली हलचलों को वे अनदेखा न कर सकते थे। इस समय बेल्जियम में फ्रांसीसी भाषा–भाषियों का वर्चस्व था। फ़्लेमिश बोलना गँवारपन या पिछड़ेपन या जंगलीपन का लक्षण माना जाता था। फ्रांसीसी बेल्जियम के अभिजात–सत्ताधारी वर्ग की भाषा थी और इसी कारण सारे बेल्जियम की राजभाषा बना दी गई थी, लेकिन अधिकांश सामान्य जनता फ़्लेमिश बोलती थी। इस स्थिति में थोपी गई भाषा के खिलाफ और अपनी मातृभाषा को सम्मान दिलाने के लिए सारे प्रदेश में जोरदार आंदोलन शुरु हुए, जिसका केंद्र लूवेन विश्वविद्यालय बना। कामिल न केवल इस आंदोलन में भाग लेने लगे, बल्कि वे इसके नेता के रूप में भी उभरकर सामने आए। आंदोलन में भाग लेने के लिए वे अपनी कक्षाओं तक को छोड़ने लगे। जब अनिवार्य विषय की कक्षा में अध्यापक फ्रांसीसी में व्याख्यान देने लगते, तब कामिल अपने सहपाठियों के साथ मिलकर ज़ोर–ज़ोर से फ़्लेमिश गीत गाना शुरु कर देते। यह उनके प्रतिरोध का एक तरीका था।

इसके बाद अचानक उन्होंने सन्यास ग्रहण करने का निर्णय लिया, लेकिन किसी को बताया नहीं, बल्कि उन्होंने अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई जारी रखी और साथ ही लूवेन जेसुइट सेमिनरी में जाकर विश्व प्रसिद्ध आचार्य फ़ादर साल्समैन से नीतिशास्त्र की पढ़ाई भी करने लगे। इससे पहले कामिल की बुआ एमेरांस और छोटा भाई रॉबर्ट सन्यास ले चुके थे। बी.एससी की पढ़ाई करने के बाद उन्होंने अपने इस निर्णय के बारे में परिवार को बताया, जिसे कुछ अन–बन के बाद माता–पिता दोनों से स्वीकार कर लिया। 23 सितंबर 1930 को कामिल बुल्के ड्रांगन नगर के जेसुइट नवशिष्यालय में चले गए। इसके दो वर्षों बाद नीदरलैंड़ जाकर धर्मशिक्षा हासिल की। यहाँ उन्होंने लैटिन और ग्रीक के साथ जर्मन भाषा भी सीखी। जर्मन कवि गेटे, हाइने और रिल्के की कविताएँ उन्हें खास पसंद थीं। इसी के साथ उन्होंने ग्रिगोरियन विश्वविद्यालय, रोम से दर्शनशास्त्र में एम.ए. भी पूर्ण किया। यही पढ़ाई करते हुए इनके भीतर मौजूद लेखक को अपने आप को अभिव्यक्त करने का पहला मौका मिला। उन्होंने जर्मन में 'माइन डोर्फ़' (मेरा गाँव) और 'मनुष्य मात्र की समानता' शीर्षक से दो लेख/निबंध लिखे। यहाँ की पढ़ाई पूरी करते–करते वे ब्रदर बन गए और सन 1934 में वापस लूबेन की सेमिनरी आ गए। यहाँ उन्होंने एक वर्ष का चिकित्सा विज्ञान का पाठ्यक्रम पूरा किया, जो अनिवार्य सैनिक सेवा के अंतर्गत उन्हें करना पड़ा। यहीं पर वे भौतिकी और गणित की पढ़ाई भी करने लगे। 20 अक्तूबर 1935 को जब अपने गांव और परिवार वालों से मिलकर कामिल बुल्के भारत में अपनी सेवाएँ देने के लिए रवाना हो रहे थे, तब उनकी माँ उनसे जीवन में दोबारा कभी न मिल पाने विचार से बेहोश हो गई।

लगभग एक महीने का जहाज़ का सफ़र पूरा करने के बाद मुंबई में फ़ादर कामिल बुल्के का आगमन हुआ। यहाँ से पहले राँची और फिर इसके बाद भौतिकी और रसायन विज्ञान के अध्यापक के रूप में सेंट जोसेफ़ महाविद्यालय, दार्जिलिंग भेजे गए। दार्जिलिंग की आब–ओ–हवा उन्हें रास न आई और वे वापस राँची लौट आए। इसके बाद वे गुमला के संत इग्नाशियुस विद्यालय में गणित पढ़ाने लगे। इसी विद्यालय में हिंदी के घंटे में छात्रों के पीछे बैठकर हिंदी भाषा सीखने लगे। यहाँ उन्होंने हिंदी के साथ–साथ ब्रज

और अवधी को भी समझने की क्षमता हासिल कर ली। इन्हीं कक्षाओं में बैठकर उन्हें तुलसीदास से लगाव हो गया और तुलसीदास की कविताओं को समझे के लिए उन्होंने हिंदी एवं संस्कृत अध्ययन करने का निश्चय किया, जिसके लिए वे सीमागढ़ (हज़ारीबाग़) गए। एक वर्ष के भीतर ही उन्होंने कठिन परिश्रम और अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर इतनी भाषा सीख ली कि वे तुलसीदास के साहित्य, गीता और वाल्मीकि रामायण जैसे ग्रंथों का अर्थ निरूपण करने लगे और इतना विशाल शब्दसागर इकट्ठा कर लिया कि उन्हें उनके गुरु बदरीदत्त जी 'चलता–फिरता शब्दकोश' कहा करते थे।

जनवरी, 1939 में कामिल चार वर्षों के लिए सर्वोच्च धर्मशिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से सेंट मेरी थियोलॉजिएट, कुर्सियांग भेजे गए। यहाँ उन्होंने प्रसिद्ध भारतविद् फ़ादर बायार्त के निर्देशन में 'द थीइज़्म ऑफ़ न्याय वैशेषिक' (न्याय वैशेषिक का ईश्वरवाद) नामक लघु–शोध–प्रबंध लिखा, जो 1947 में ओरियंट इन्स्टीट्यूट, कोलकाता से प्रकाशित हुआ। इस दौरान उन्होंने बाइबल के 'नया विधान' (न्यू टेस्टामेंट) के ईसा के जीवन की सामग्री का व्यवस्थापन 'द सेवियर' नाम से किया। 1940 में इसका हिंदी अनुवाद 'मुक्तिदाता' नाम से प्रकाशित किया। इसी वर्ष उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की विशारद परीक्षा पास की। 1940 में एक पुस्तकालय का उद्घाटन करने के लिए काका कालेलकर (हिंदी साहित्यकार) कर्सियांग आए थे, तब उन्होंने इस सभा की अध्यक्षता कर रहे फ़ादर कामिल बुल्के के भाषण और भाषा क्षमता की प्रशंसा की, जिसे सुनकर फ़ादर कामिल बुल्के ने हिंदी में एम.ए. करने का निश्चय किया। 1945 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से हिंदी और संस्कृत विषय लेकर बीए किया और एम.ए. के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। 1947 में एम.ए के बाद उन्होंने डॉ. माताप्रसाद गुप्त के निर्देशन में 'राम भक्ति का विकास' नाम से शोध शुरु किया। सामग्री की विपुलता देखते हुए धीरेन्द्र वर्मा ने उन्हें 'राम कथा विकास' विषय पर काम करने का सुझाव दिया। 1949 में 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' शीर्षक शोध–प्रबंध कई मायनों में हिंदी साहित्य में शोध की नवीनता और नई

परंपराओं को स्थापित करता है। इसकी सबसे पहली विशेषता तो यह है कि यह हिंदी माध्यम में प्रस्तुत हिंदी का पहला शोध प्रबंध है।

सन 1950 में डॉ. फ़ादर कामिल बुल्के की नियुक्ति सेंट ज़ेवियर कॉलेज, राँची में हिंदी और संस्कृत के विभागाध्यक्ष के पद पर की गई। इसके बाद भी उन्होंने रामकथा संबंधी अपने शोध–कार्य को जारी रखा और अपनी पुस्तक को अद्यतन करते रहे। 1962 में 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' पुस्तक का दूसरा और 1973 में तीसरा संस्करण छपा, जिसमें पहले से आठ सौ अधिक पृष्ठ जुड़ गए थे। बहुभाषी होने के कारण उन्होंने देश–विदेश से रामकथा संबंधी अनगिनत सामग्री इकट्ठा कर ली। इसका अध्ययन कर उन्होंने रामकथा के अनेक पात्रों, प्रसंगों तथा वाल्मीकि, तुलसीदास, हिंदी और तुलनात्मक दर्शन पर हिंदी, अंग्रेज़ी और फ़्लेमिश में साठ से अधिक लेख/निबंध लिखे। इस बीच उन्होंने 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' के चौथे संस्करण को भी तैयार कर लिया था। तुलसीदास की कविता और भक्ति से वे अत्यंत प्रभावित थे और तुलसी जयंती पर देश भर में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किए जाते थे। तुलसीदास को वे विश्व के महान कवियों में से एक मानते थे और उनके विचारों को दर्शन की मान्यता देते थे। वे तुलसीदास पर एक पुस्तक लिखना चाहते थे, जिसे पूर्ण न कर सके।

उन दिनों भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन अपने पूर्ण गति में था, जिसका एक अंग हिंदी के माध्यम से देश को जोड़ना और लोगों को अपनी मातृभाषा को ज्ञान की भाषा के रूप में आत्मसम्मान से देखने की दृष्टि का विकास करना भी था। डॉ. फ़ादर कामिल बुल्के अपने फ़्लेमिश आंदोलन के अनुभवों के आधार पर भारत में विदेशी भाषा अंग्रेज़ी के वर्चस्व के विरोध में जनभाषा के समर्थन में खड़े हुए। इसके लिए उन्होंने सबसे पहले पारिभाषिक शब्दावली का लघु–कोश 'अ टेक्निकल इंग्लिश–हिंदी ग्लॉसरी' (1955) तैयार किया, जिसे मिली प्रशंसा और सफलता के चलते बृहद (बड़ा) कोश बनाने की योजना बनाई; जिसके चलते सन 1968 ई. में प्रकाशित 'अंग्रेजी–हिंदी कोश' प्रकाशित हुआ, जो अपने क्षेत्र का बेहतरीन कोश है।

इसके अतिरिक्त, फ़ादर कामिल बुल्के लगातार 40 वर्षों तक बाइबल का अनुवाद करते रहे और उसे और–और बेहतरीन बनाने का प्रयास करते रहे। 1942 में 'मुक्तिदाता' नाम से इसके कुछ अंशों का प्रकाशन हुआ। 1977 में 'न्यू टेस्टामेंट' का 'नया विधान' नाम से अनुवाद प्रकाशित हुआ। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पटना) के अनुरोध पर मॉरिस मेटरलिंक के विश्व–प्रसिद्ध नाटक का 'The Blue bird' का अनुवाद 'नील पंछी' नाम से किया, जो 1958 में प्रकाशित हुआ। जून 1982 में जब उनके दाहिने पैर की उँगली में गैंग्रीन हुआ तब वे 'ओल्ड टेस्टामेंट' से अलग–अलग ग्रंथों का अनुवाद कर रहे थे। इसके बाद पहले राँची और फिर पटना के मिशन अस्पतालों में इनका इलाज होता रहा। गैंग्रीन के बहुत ज़्यादा फैलने के कारण 8 अगस्त 1982 को उन्हें दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भरती किया गया, जहाँ, 17 अगस्त 1982 को सुबह 8 बजे उनका निधन हो गया।

डॉ. फ़ादर कामिल बुल्के भारतीय संस्कृति और जीवन में इस तरह घुल–मिल गए थे, जैसे वे अपने लोगों में रह रहे हों। अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था, "भगवान के प्रति धन्यवाद, जिसने मुझे भारत भेजा और भारत के प्रति धन्यवाद, जिसने मुझे इतने प्रेम से अपनाया है।" सन 1950 में ही उन्होंने कानूनी रूप से भारत की नागरिकता ग्रहण कर ली थी। उन्हें बेल्जियम के राजा ने राजकीय अकादमी का सदस्य भी मनोनीत किया था। इसके साथ ही 1974 में उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया गया था।

परिश्रमी, परोपकारी, स्वाभिमानी, मृदुभाषी और शरीर से अत्यंत बलिष्ठ तथा स्वास्थ्य के प्रति सचेत व्यक्ति के रूप में उनकी पहचान थी। उन्हें साइकिलिंग का शौक था। राँची की सड़कों पर अक्सर वे साइकिल चलाते हुए देखे जा सकते थे। वे फुटबॉल भी बेहतरीन खेला करते। इन सब के अलावा, हिंदी में वे तुलसीदास के विशेष अध्येता और हिंदी भाषा और अनुवाद के विशेषज्ञ के रूप में जाने जाते हैं। प्रो धीरेंद्र वर्मा ने फ़ादर बुल्के के ग्रंथ 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' के बारे में कहा है, "यह ग्रंथ

वास्तव में रामकथा–संबंधी समस्त सामग्री का विश्वकोश कहा जा सकता है। ...वास्तव में यह खोजपूर्ण रचना अपने ढंग की पहली ही है। हिंदी क्या, किसी भी यूरोपीय अथवा भारतीय भाषा में इस प्रकार का कोई दूसरा अध्ययन नहीं है।" तुलसीदास उनके प्रिय कवि थे तो विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करना उनके लिए नई संस्कृति को जीन के बराबर था। रामकथा और भारत की देशी भाषाओं को पर उनका शोध और तुलसीदास एवं भारतीय दर्शन पर उनका अगाध विश्वास उन्हें जीवन भर लेखन तथा शोध करे के लिए प्रेरित करता रहा। उनके द्वारा किया गया शोध, आज के कई लेखकों, शोधार्थियों के लिए प्रेरणा का कार्य करता है। अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम करते हुए भी द्वितीय और तृतीय भाषा के प्रति सम्मान एवं आदर प्रकट कर उसमें शोध और लेखन–कार्य कर राह दिखाई जा सकती है, इसके अद्वितीय उदाहरणों में फ़ादर डॉ. कामिल बुल्के का नाम अग्रणी रूप में लिया जाएगा।